

## कुबेरनाथ राय की साहित्यिक दृष्टि

पूनम सेठी

कुबेरनाथ राय हिंदी ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में ललित निबंध विधा के श्रेष्ठ व सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने इस विधा को एक विशिष्ट ऊँचाई प्रदान की है तथा इसके कई अनोखे व अनजाने आयामों का भी उद्घाटन किया है। भारतीय साहित्य कुबेरनाथ राय के लेखन का एक प्रमुख आयाम है। कुबेरनाथ राय ललित निबंधकार होने के साथ-साथ एक मौलिक साहित्य चिंतक भी हैं। वे एक सजग साहित्यकार हैं। साहित्य व साहित्यकार के प्रति उनकी सुचिंतित एवं दृढ़ अवधारणाएँ हैं। अपने पहले निबंध संग्रह 'प्रिया नीलकंठी' से लेकर आखिरी संग्रह 'आगम की नाव' तक वे लगातार 'साहित्य व उसके दायित्व' को परिभाषित करते रहे। उनके पूरे लेखन का लक्ष्य भारत के मूल स्वरूप का संधान है। 'माघे मेघे गतं वयः' अथवा 'काव्य शास्त्र विनोदने' के आदर्श के अनुपालन में वे जीवन पर्यन्त सद्साहित्य पढ़कर और सद्साहित्य लिखकर भारत के 'चिन्मय व्यक्तित्व' को महिमा मंडित करते रहे, 'मनुष्य व मनुष्यता' का जयघोष करते रहे। वे आजीवन साहित्य के मूल धर्म से जुड़े रहे। उनके समस्त ललित लेखन का उद्देश्य है - पाठक के चित्र को एक परिमार्जित भव्यता प्रदान करना, उसके मानसिक-क्षितिज का विस्तार करना। वास्तव में उनकी रचनाएँ पाठकों की चेतना को समृद्ध व उर्ध्वमुखी बनाने में तथा उसे मानसिक व आत्मिक समृद्धि प्रदान करने में सक्षम हैं।

**प्रमुख बिन्दु - साहित्य, साहित्य के लक्ष्य, महत्व एवं उपादेयता, साहित्यकार व उसके दायित्व, भारतीय वाड.मय**

कुबेरनाथ राय के ललित निबंध लेखन का एक महत्वपूर्ण आयाम है 'भारतीय साहित्य'। उन्होंने 'साहित्य' व 'साहित्यकार के दायित्व' से संबंधित एक दर्जन से अधिक निबंध लिखे हैं जिन्हें एकत्र कर दिया जाए तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती है। इन निबंधों के शीर्षक इस प्रकार हैं-

1. 'साहित्यकार की उत्तरकालीन दिशा-समाजवाद?' (विषाद योग), 2. 'समाजवादी सिसृक्षा और अभिव्यक्ति- संकट विषाद योग) 3. 'श्रमिक संस्कृति और सिसृक्षातोष' विषाद योग) 4. 'समाजवाद, अमलातंत्र और साहित्यकार' (विषाद योग) 5. 'माघे, मेघे गतं वयः (विषाद

योग) 6. 'विषादयोग' (विषाद योग), 7. 'कवि मनीषी परिभू स्वयंभू' (विषाद योग), 8. 'देहाश्रयी युग चेतना और साहित्य' (विषाद योग), 9. 'साहित्य उच्चगामी हो' (पत्र मणिपुतुल के नाम), 10. 'प्रजागर पर्व में साहित्य' (दृष्टि अभिसार), 11. 'आधुनिक संदर्भ में साहित्यकार की भूमिका' (मराल), 12. 'भारतीय वाङ्मय का विश्वरूप' (चिन्मय भारत), 13. 'वाणी का क्षीर सागर' (वाणी का क्षीर सागर), 14. 'लोक चित्त, हिंसा और साहित्यकार' (वाणी का क्षीर सागर), 15. 'साहित्य में सामाजिक चेतना व इतिहासबोध (वाणी का क्षीर सागर)

इन निबंधों के अतिरिक्त 'कामधेनु' संग्रह की भूमिका तथा 'गंधमादन' संग्रह में 'अपनी बात' के अन्तर्गत भी लेखक ने साहित्य व साहित्य के दायित्वों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। 'विषाद योग' संग्रह के चार निबंध तो 'अनुचिन्तन' के रूप में लिखे गये हैं जबकि अन्य चार टिप्पणियों के रूप में। ये टिप्पणियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। लेखक के ही शब्दों में : "ये मेरे साहित्यिक विश्वासों की संहिता उपस्थित करती हैं। इनके आधार पर ही मेरे सम्पूर्ण साहित्य को समझा जा सकता है।"

'प्रजागर पर्व में साहित्यकार' निबंध वास्तविक और प्रामाणिक साहित्य के स्वरूप, उसकी भूमिका, उसके उत्स और उसके लक्ष्य की गहन मीमांसा करता है। सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से यह निबंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन निबंधों के आधार पर कुबेरनाथ राय की साहित्यिक दृष्टि को निम्न शीर्षकों के माध्यम से विवेचित किया जा सकता है-

1. साहित्य
2. साहित्यकार व उसके दायित्व
3. भारतीय वाङ्मय : वाणी का क्षीर सागर

## साहित्य

कुबेरनाथ राय अत्यन्त सजग एवं संवेदनशील साहित्यकार हैं। वे जीवन पर्यन्त एक ही विधा से जुड़े रहे। असीम प्रतिभा से सम्पन्न होते हुए भी वे अपने लम्बे साहित्यिक जीवन में एक ही दिशा में क्यों लेखन करते रहे? इसे समझने में उनके निम्न दो वक्तव्य सहायक हो सकते हैं-

1. "साहित्य का स्वर्णपाद है काव्य, जिसके एक-एक दोहे पर कभी एक-एक दीनार कटती थी; एक-एक श्लोक पर एक-एक तालुका निछावर होता था। इसका रजतपाद है गद्य

अर्थात् निबंध-प्रबंध, दर्शन-इतिहास का टकसाली साहित्य, जिसमें खोटे सिक्के ज्यादा दिन नहीं चल सकते। ताम्रपाद है जैसे सेर बिकने वाला विपुलकाय कथा' साहित्य और लौहपाद है पत्रकारिता, जिसके अस्थि-पिंजर की रचना हिंसा-प्रतिहिंसा से होती है।'<sup>2</sup>

2. "किसी भी जाति की मूल प्रकृति का सच्चा थर्मामीटर है उस जाति का काव्य-साहित्य और उसकी बौद्धिक गंभीरता तथा उदारता का परिचायक है निबंध-साहित्य। यह मंत्र मुझे छात्रावस्था में स्वर्गीय काका कालेकर के मुख से पहली बार सुनने को मिला था और इसमें मेरा विश्वास तभी से निरन्तर बना हुआ है। निबंध ही किसी जाति के ब्रह्मतेज को व्यक्त करता है।'<sup>3</sup>

सम्भवतः इन्हीं दो कारणों से कुबेरनाथ राय ने आजीवन केवल ललित निबंधों का सृजन किया और कुछ कविताएँ लिखीं जो उनके काव्य संकलन 'कंधामणि' में संकलित हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य के शिखर पर काव्य और निबंध ही विराजमान हैं। उनकी इस दृष्टि के संदर्भ में वरमेश्वर नाथ राय लिखते हैं- "कविता से किसी देश या जाति की आंतरिक ऋद्धि की व्यंजना होती है और निबंध से बौद्धिक समृद्धि और चिंतन के औदात्य की। उन्होंने कविताएँ लिखी हैं भारत की आंतरिक ऋद्धि और उसके बौद्धिक औदात्य दोनों को ऊँचाई देने के लिए, क्योंकि ये निबंध नहीं, ललित निबंध हैं। ललित निबंध हृदय और बुद्धि दोनों की महिमा को एक साथ स्वीकार करके चलते हैं।'<sup>4</sup>

लेखक की दृष्टि में वही साहित्य श्रेष्ठ है जिसके चारों पाये विस्तार, गहराई, उदात्ता व रोचकता (लालित्य) समान रूप से सबल हों क्योंकि धर्म की ही तरह साहित्य भी चतुष्पाद सत्ता है।

कुबेरनाथ राय के लिए साहित्य मौज शौक का ही साधन नहीं है। वे साहित्य को अत्यन्त उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। वे साहित्य से प्राप्त आनंद को मोक्ष के समकक्ष रखते हुए लिखते हैं- "साहित्य भी एक अर्थ में मोक्ष है, क्योंकि यह भी इसी प्रकार की मनोभूमि उपलब्ध कराता है, यद्यपि अल्पकाल के लिए हम विकलता, उत्तेजना, भय और निराशा की व्यक्तिगत कथाओं से अतृप्तियों से ऊपर उठ जाते हैं, ऐसी मनोभूमि में जहाँ कुछ करने या पाने की विकलता नहीं रहती बल्कि एक स्वादिष्ट शान्ति और सुखद निष्क्रियता का अनुभव होता है। इसी से मैं शिल्प और साहित्य के माध्यम से उपलब्ध आनन्द को या तो चतुर्थ पुरुषार्थ 'मोक्ष' का सहचर मानता हूँ, अथवा पंचम पुरुषार्थ मानता हूँ।'<sup>5</sup>

साहित्य देशकाल सापेक्ष होता है, बाद में वह अपनी अन्तर्निहित क्षमता तथा उत्कृष्टता से देशकालातीत हो जाता है और इसी देशकाल सापेक्षता के आधार पर देशकालानुसार साहित्य को परिभाषित किया जाता रहा है। साहित्य के प्रति ठोस व दृढ़ मान्यता ही साहित्यकार के सृजन का आधार होती है। श्री राय ने अपने लेखन में अपनी साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। 'रामायण' पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं- "रामायण की सर्वोच्च उपलब्धि है शील-सौन्दर्य का दृढ़ एवं इसी का पुंखानुपुंख निरूपण। इस दृष्टि से यह विश्व का अद्वितीय काव्य है। रामायण में 'सुंदर' खोजते समय इस बात को भी सदैव ध्यान में रखना होगा कि वाल्मीकि की दृष्टि में सौन्दर्य का अर्थ है -शील समृद्ध सौन्दर्य।"<sup>6</sup>

इस प्रकार कुवेरनाथ राय साहित्य को सौन्दर्य रस तथा शील के साथ समन्वित करके देखते हैं। इनमें से किसी एक का भी अभाव उन्हें स्वीकार्य नहीं। इसी आधार पर वे रामायण की तुलना में महाभारत को हेय मानते हैं। वे साहित्य के द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण समाज के लोन्नयन की बात करते हैं। साहित्य की यदि कोई तथाकथित समाजवादी उपयोगिता नहीं है तो उसे असामाजिक कहना चाहिए, ऐसी धारणा भी हिंदी क्षेत्रों में विकसित हो चुकी है, ऐसे में साहित्य की क्या उपयोगिता है? इसके प्रत्युत्तर में लेखक का कथन है- "साहित्य और वाङ्मय से जो कुछ हमें प्राप्त होता है वह मानसिक समृद्धि है, मानसिक स्वास्थ्य है, मानसिक संस्कृति है। साहित्य हमारे मन की निरन्तर चिकित्सा करता रहता है, निरन्तर कर्षित-परिष्कृत करता रहता है और उसमें निरन्तर प्राणबीज उगाता रहता है।"<sup>7</sup>

"यह एक मानसिक चिकित्सा है, मानसिक भोजन-पान है और मानसिक तेजस्क्रियता है। जैसे देह के लिए रोटी-दाल 'विलास' नहीं 'आवश्यकता' है वैसे ही साहित्य और रस प्रधान साहित्य मन की आवश्यकता है, खुराक और अनुपात है। साहित्य की प्रत्यक्ष 'अपील' 'व्यक्ति' से होती है, 'भीड़ पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साहित्य 'समूह' को या 'जाति' को प्रभावित करता है उसकी सजीव इकाई 'व्यक्ति-प्रति-व्यक्ति के माध्यम से ही।"<sup>8</sup>

"पर इसके साथ ही साहित्य का एक सक्रिय दायित्व भी है। वह है 'प्रवृत्ति' (attitude) का सृजन और सम्बर्द्धन रस प्रधान साहित्य शब्द ब्रह्म का आनन्दमय रूप है। कालिदास की कविता पढ़ना मानो ब्रह्म का पान करना है, एक शान्त आनन्द बोध है, परन्तु साथ ही साथ भीतर के चिन्मय व्यक्तित्व का एक सक्रिय जागरण भी है। 'रधुवंशम्' पढ़ते समय

श्लोक प्रति श्लोक दोनों तथ्यों का बोध होता चलता है। शब्द ब्रह्म के आनन्द का पान करने से हमारे अन्तर के प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष तृप्त और सबल होते हैं।<sup>19</sup>

ये सब लेखक के वक्तव्य मात्र नहीं हैं, वे अपने लेखन में इन्हें चरितार्थ भी करते हैं। साहित्य मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है - “सही ढंग से मनुष्य होने में एक सौन्दर्य है। साहित्य व अन्य कलाएँ मानव मन का विकास मात्र ही नहीं करती अपितु मनु-य की मानसिक ऋद्धि भी करती हैं। यही इनका प्रत्यक्ष फल है। साहित्य का लक्ष्य सदैव रहेगा कि मनुष्य के चिंतन में मानसिक ‘ऋद्धि’ और उसकी भाषा में शालीन भंगिमा तथा चित्त में सहज उदारता प्रतिष्ठित हो। मानसिक ऋद्धि, शालीन वचन तथा स्वभावगत उदारता ये तीनों किसी भी युग में महत्वहीन नहीं हो सकते।

इस प्रकार कुबरेनाथ राय ने साहित्य के लक्ष्य, महत्व और उसकी उपदेयता को अपने लेखन में अनेक स्थानों पर रेखांकित किया है। ‘पत्र मणिपुतुल के नाम’ संग्रह में उन्होंने लिखा है कि साहित्य के श्रेष्ठ होने की पहली शर्त है साहित्य का ‘उच्चगामी’ होना। साहित्य को चाहिए लालित्य, विस्तार, गहराई और ऊँचाई चारों। ऊँचाई का मतलब होता है उर्ध्वगामिता या उच्चगामिता, इसके अभाव में साहित्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

### आधुनिक साहित्य

कुबरेनाथ राय जिस कालखण्ड के रचनाकार हैं, उस कालखण्ड में मनुष्य, धरती और ईश्वर का सामंजस्य पूरी तरह बिखर गया है। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। जीवन के शाश्वत मूल्यों को तिरस्कृत कर देने के कारण न तो उसमें सच्चाई रह गयी है, न निष्पक्षता। इसीलिए लेखक को आधुनिक साठोत्तरी साहित्य विपथगामी लगता है। लेखक कहता है कि मैं जब-जब नयी कहानी अथवा साठोत्तरी कविता पढ़ता हूँ तब-तब लगता है कि मैं पठन-श्रम के पुरस्कार से वंचित हो रहा हूँ जो पाठक का मौलिक अधिकार है और साहित्य का प्रथम दायित्व है। लेखक की अपेक्षा है कि साहित्य पठन से रस व आनंद न भी मिले तो कुछ तो मिलना ही चाहिए, कोई तीव्र बोध या क्षुरधार संवेदना ही सही, पर साठोत्तरी साहित्य लेखक की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता।

लेखक को हिन्दी का साठोत्तरी साहित्य निरन्तर संस्कारविहीन, दुःशील तथा दुर्मुख प्रतीत होता है, जो भाषिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अपने मूल या जड़ से कटा है। लेखक के अनुसार

संस्कृति व भाषा का भी अपना एक वनस्पतिशास्त्र होता है। 1960 के बाद के हिंदी साहित्य में संवेदना व भाषा के धरातल पर उस बानस्पतिक चेतना का दिनोंदिन हास होता जा रहा है जिससे साहित्य की जड़ें गहराई में जाती हैं तथा वह दीर्घजीवी होता है। इस दुर्गति के लिए लेखक नयी आलोचना को पिच्चतर प्रतिशत जिम्मेदार मानता है।

लेखक को विद्रोह और प्रगति से जुड़े नवलेखन में क्रोध, लोभ और काम की ही अभिव्यक्ति अधिक दिखायी देती है, उसमें उन्हें प्रीति और विश्वास का अभाव दिखाई देता है। डा. महेन्द्र राय लेखक की इस चिंता को व्यक्त करते हुए लिखते हैं-“उन्होंने सर्वदा लक्षित किया कि आज पश्चिमी विचारक जहाँ मानव-जाति के सामने उपस्थित आस्था और विश्वास के संकट को लेकर चिंतित है, वहाँ हम पश्चिमी प्रभाव में इन्द्रिय सत्य को ही सबसे बड़ा सत्य मानते जा रहे हैं, जबकि हमारे बहुत सारे अहम् प्रश्नों का उत्तर मनुष्य की सीमाबद्ध क्षुद्र बुद्धि के पास नहीं है। इनका समाधान भावना, कल्पना और अर्न्तदृष्टि के द्वारा ही हो सकता है।”<sup>10</sup>

आज के हासोन्मुख साहित्य का प्रमुख कारण है लेखकों की उत्तरदायित्वहीनता, शील-विस्मृति एवं राजनीति का पिछलग्गू होना। उनकी नवीन नैतिकता एवं समूहगत शील की बात करना केवल वार्ता मात्र है। आज के साहित्य में प्रासंगिकता एवं प्रतिबद्धता मात्र राजनीति-सापेक्ष है जबकि लेखक का कहना है-

“मैं साहित्य को राजनीति का अनुचर मानने के लिए कतई तैयार नहीं हूँ। मैं राजनीति के सर्वग्रासी वर्चस्व को मान्यता देने से इन्कार करता हूँ। आज की राजनीति मनुष्यत्व के प्रमूल्यों का भी अपनी सुविधानुसार ‘कोटा’ निर्धारित करती है और इसे सिद्धांतवादी का जामा पहनाने का काम साहित्यकार और पत्रकार करते हैं। मैं राजनीति द्वारा प्रस्तावित और प्रचारित इस अपमानवीकरण और अपसंस्कृति का विरोध करता हूँ और साहित्यकार का चालू राजनीति का नाई-बारी-भांट, चारण और अनुचर मानना मुझे स्वीकार नहीं।”<sup>11</sup>

लेखक राजनीति को साहित्य के लिए अछूत नहीं मानता पर राजनीतिक मूल्यों के समर्थन के नाम पर साहित्य में कट्टरपंथी सम्प्रदायवाद के वह खिलाफ है। और साहित्यकार तो लोक-चक्षु और लोक-जिहवा है, उसे तो अन्याय व अत्याचार का प्रतिवाद करना ही होगा। अतः लेखक मनुष्य व मनुष्यता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दृढ़ता के साथ व्यक्त करता है-

“मनुष्य की मनुष्यता के प्रति मेरी इस प्रतिबद्धता को कोई गाली देना चाहे तो दे परन्तु मैं मनुष्य को (और उसकी अपनी ही प्रतिमा के रूप में ‘ईश्वर’ और ‘प्रकृति’ को भी) छोड़कर अन्य किसी के प्रति साहित्य को प्रतिबद्ध नहीं मानता। शेष अन्य प्रकार की प्रतिबद्धता अधूरी है, चाहे वह प्रतिबद्धता बहुविज्ञापित समाजवाद के ही प्रति क्यों न हो।”<sup>12</sup>

लेखक को इस बात से बहुत पीड़ा है कि देहाश्रयी युग चेतना में जी रहा आज का मनुष्य अपने चिन्मय व्यक्तित्व को पहचानने में निरन्तर अक्षम व असमर्थ होता जा रहा है। उन मूल्यों का निरन्तर क्षरण होता जा रहा है जिनसे मनुष्यत्व परिभाषित होता आया है। डॉ. वरमेश्वर नाथ राय लेखक के निबंधों के लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—“अपने ‘आत्मिक मूलाधार’ से विच्छिन्न होने के कारण मनुष्य आज विकसित की दशा में पहुँच चुका है। वह दिग्भ्रमित हो चुका है। अतः आवश्यकता है उस औषधि के सन्धान की जो उसे मानसिक और बौद्धिक निरूजता प्रदान कर सकें आवश्यकता है उस माणि-दीप की जो उसके मन के घनान्धकार को विदीर्ण करके अपने प्रकाश से उसके जीवन-पथ को आलोकित और निर्देशित कर सके। कुबेरनाथ राय के निबंधों का लक्ष्य है उसी औषधि और माणिदीप की तलाश करना।”<sup>13</sup>

मानवीय चरित्र के अमानवीकरण की इस प्रक्रिया में लेखक साहित्य के भीतर ही उस ‘गंधमादन’ को खोजने में प्रयासतर हैं जिसकी गोद में तमसाछन्न रात्रि को विदीर्ण करता हुआ चार औषधियों का प्रकाश दहक रहा हो, यही उनका आदर्श व उनकी चेष्टा का लक्ष्य बिन्दु है।

इस प्रकार कुबेरनाथ राय के साहित्य-सम्बन्धी ये निबंध साहित्य-चिंतन व साहित्य-समीक्षा के विविध आयाम रचते हैं। इनमें लेखक का तेजस्वी समीक्षक रूप सम्पूर्ण भास्वरता से उभरकर सामने आता है।

### साहित्यकार व उसके दायित्व

कुबेरनाथ राय आज के इस कुत्सित राजनीतिक युग, कुंठित जनशक्ति एवं हासोन्मुख समाज में साहित्यकार की महती भूमिका को रेखांकित करते हैं। उनकी मान्यता है कि इस शताब्दी में ‘धर्म’ अपना प्रभाव खो चुका है। अतः धर्म की भूमिका का एक बहुत बड़ा अंश साहित्य के कंधे पर ही है। अतः साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह लोकशक्ति को स्वस्थ और सबल रखने में सहायता दे और कंठखोलकर सही को सही व गलत को गलत कहे क्योंकि

राजनीतिज्ञ के लिए भले ही किसी प्रासंगिकता का अर्थ महज पाँच साल हो परंतु साहित्यकार जो देश की आँख है, जो लोक चक्षु है, उससे दीर्घकालीन दृष्टि की अपेक्षा की जाती है।

समस्त सामाजिक व राजनीतिक परिदृश्य पर दृष्टिपात करने पर लेखक को मुख्यतः तीन प्रवृत्तियाँ नजर आती हैं - 1. भविष्य के प्रति तीव्र निराशा व कुंठा । 2. सर्वभक्षी लोलुपता । 3. अंधी प्रतिहिंसा। इस तीव्र परिवर्तन के काल में साहित्य की 'धारक भूमिका' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि साहित्य मनुष्यत्व के मूल्यों का पुरोहित व पहरूवा है। वह ही हमारे समाज को इस संकट से उबार सकता है। ऐसी संकट की स्थिति में लेखक भारत तथा समूचे दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व-एशिया के साहित्यकारों से तीन दायित्वों की पूर्ति की अपेक्षा करता है-

1. "हिंसा के प्रति अंध एवं रोमाण्टिक आग्रह के स्थान पर 'विवेक की प्रतिष्ठा।'"
2. मानुषीशीलाचार के मूल्यों की रक्षा तथा दुराग्रहीवादों के अतिचार का वर्जन
3. घायल इच्छाशक्ति की चिकित्सा व निरुजता, जो तीव्र निराशा, अंधी लोलुपता और अंधी हिंसा के फोड़ों से विकल हो उठी है।"<sup>14</sup>

लेखक के अनुसार आज देश के सभी राजनीतिज्ञों दलों व पार्टियों के तरीके, व्यवहार व आकांक्षाएँ एक सी हैं। आज देश में सिर्फ दो दल हैं। एक दल में हैं- टेकेदार, व्यवसायी, अफसर, राजनीतिज्ञ तथा पत्रकार व बुद्धिजीवी तथा दूसरा दल है दर्शक बना पूरा देश या देश की जनता। ऐसी स्थिति में आज के साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह इन दोनों (पूँजीतंत्र व राजनीति) के षडयंत्रों के विरुद्ध खड़ा हो और देश की अस्मिता तथा उसकी इच्छाशक्ति को सहज, सप्राण व स्वस्थ रखने की दिशा में अपना रचनात्मक सहयोग दे। साहित्यकार की भूमिका यही हो सकती है कि किसी राजनीतिक पार्टी या संगठन की जमीन पर खड़ा होकर इस देश की इच्छा शक्ति को निर्बीज, क्षत-विक्षत तथा विभ्रान्त होने से बचावे। इस तरह साहित्यकार की भूमिका जीवन और अमृत से जुड़ी है संहार और गरल से नहीं।

लेखक के अनुसार इसके लिए साहित्यकार को दो कार्य करने होंगे- प्रथमतः तो उसे देश की इच्छाशक्ति के विरुद्ध की जा रही अर्थतंत्र व राजनीतिज्ञों की साजिशों को समूल नष्ट करना होगा और दूसरा उसे लोकजीवन से जुड़कर साहित्य कर्म करना होगा। इसके लिए उसे साहित्य की भाषा और संवेदना की जड़ को चालू राजनीति से विमुख कर लोक जीवन व स्वानुभूत सत्य में स्थापित करके रचना कर्म करना होगा।



साहित्यकार को मानसिक भूख व तृषा को तृप्ति प्रदान करने वाले किसान के रूप में उपमित कर लेखक का कहना है कि देश को सजीव, सप्राण फसल पैदा करने वाला क्षमतावान साहित्यकार रूपी किसान चाहिए- “यह देश धर्म के अष्टांग बीजों की खेती करने वाले कुरु महाराज का ‘धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र’ है। साहित्यकार भी मनुष्यत्व के अष्टांग बीजों की भलमनसाहत, क्षमा, सहाचर्य, ममता, वात्सल्य, करुणा, साहस और शौर्य की खेती करें तभी वह इच्छा शक्ति को बेडौल और चपटी तथा विभ्रान्त होने से बचा पायेगा।”<sup>15</sup>

लेखक ने साहित्यकारों को दो श्रेणियों में रखा है प्रथम वे, जो सम्पाती की तरह होते हैं, सदैव उर्ध्वगामी, पंख जल जाने पर भी निराशा, हताशा से दूर रहते हैं तथा पराजय मिलने पर भी सदैव चिन्तारहित रहते हैं। दूसरे प्रकार के साहित्यकार जटायू की श्रेणी में आते हैं जो सत्य की खोज का साहस तो करते हैं पर चुनौतियों को द्वार पर देखकर लौट आते हैं मुकाबला नहीं करते।

लेखक आज के प्रतिष्ठाकामी, इस कोलाहल में ‘हीरो’ बनने के उत्सुक साहित्यकारों से निवेदन करते हैं कि वे समय-समय पर अपने साहित्यकर्मों का लेखा-जोखा अपने पूर्वज साहित्यकारों को प्रस्तुत करते रहें तथा अपने उत्तरदायित्व का बोध करते रहें। युवा शक्ति से भी लेखक की अपील है कि वे अखबारबाजी और गड़बड़ - सड़बड़ में न फँसकर कुछ उस दिशा में टोस प्रयत्न करें जिससे कि हिन्दी भी सार्वभौम वाङ्मय का वाहन बने और उसी भूमिका को निभाने में समर्थ हो सके जो कभी संस्कृत निभाती थी।

हिन्दी के सर्वांगीण विकास का दायित्व तो हिन्दी साहित्यकारों का ही है उनका मानना है कि अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी के साहित्यकार का दायित्व अधिक है। आधे देश की मानसिक संरचना हिन्दी के साहित्यकारों के जिम्मे है। हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण विकास का अर्थ होता है देश की आधी जनता के मानस का सर्वांगीण विकास। यह केवल अखबारबाजी से नहीं हो सकता।

इस प्रकार कुबेरनाथ राय हिन्दी को विश्व वाङ्मय में प्रतिष्ठित करने की अभिलाषा करते हुए साहित्यकारों के दायित्वों का उल्लेख करते हैं तथा उनसे गह्रित पथ छोड़कर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने का निवेदन करते हैं। वे अपने लेखन में अनेक स्थानों पर साहित्यकारों के विधायक एवं दिशा निर्देशक व्यक्तित्व का रूपांकन करते हुए नैतिक व सांस्कृतिक स्तर पर उसके दायित्वों का उल्लेख करते हैं। वे यही चाहते हैं कि आज का रचनाकार अपनी

मेघा, प्रतिभा और तेजस्विता की जमीन पर खड़ा होकर उच्चगामी स्वस्थ मानसिक वृत्ति और उन्नत संस्कारों को जाग्रत करने की दिशा में सृजनशील बने।

### **भारतीय वाङ्मय : वाणी का क्षीर सागर**

भारतीय वाङ्मय कुबेरनाथ राय के ललित निबंध लेखन का एक महत्वपूर्ण आयाम है। वे इस वाङ्मय से इतने अभिभूत हैं कि समस्त भारतीय साहित्य को 'वाणी का क्षीरसागर' से उपमित करते हैं। उनकी मान्यता है कि भारतीय साहित्य में निर्मल भावनाओं की विरजा नदी बह रही है। ये भावनाएँ व्यास और वाल्मीकि से चलकर कबीर, सूर, तुलसी तक प्रवाहित होती आई हैं। इन्हीं में हम भारतीय प्रज्ञा का श्रेष्ठ रूप देख सकते हैं। भारतीय साहित्य अपने श्रेष्ठतम रूप में 'वाणी का क्षीरसागर' है-

“कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय साहित्य अपने श्रेष्ठतम रूप में वाणी का क्षीरसागर है। अनुभव का परमधाम है। बोध का कैलाश शिखर है। इस क्षीर सागर में डुबकी लगा लेने पर मन पूर्ण काम और वि-गुरूप हो जाता है। स्थायी रूप में ऐसा होना तो अभ्यास और तप पर निर्भर है परंतु यह डुबकी मन को कुछ काल के लिए शांत और अनातुर, अहिंसक और आनंद तरंगायित तो कर ही देती है। इस साहित्य की निरन्तर उपासना करने पर हमारा मनशील का चक्र और बोध का शंख धारण करके विष्णुत्व की ओर अग्रसर होने लगता है। दृष्टि अनातुर और प्रसन्न हो जाती है। चित्त विस्तृत और गंभीर हो जाता है और भाषा आशीर्वादमयी-मांगलिक हो जाती है। अद्भुत है यह वाणी का क्षीरसागर और अद्भुत हैं ये तीन महाकाव्य-रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत, ये हमारी 'परमा-स्मृति' का हृदय रचते हैं।”<sup>16</sup>

समस्त भारतीय साहित्य की सघन व्याख्या करते हुए लेखक अपने लेखन में भारतीय साहित्य के मूल का विवेचन करते हैं। -'लौट जा उत्तरा फाल्गुनी' निबंध में तो लेखक भारतीय वाङ्मय को एक पालकी से उपमित करते हैं जिसे विभिन्न युगों में वहन करने वाले कहार कभी मंत्र सृष्टा ऋषि मुनि रहे तो कभी अन्य कवि गण। इस वाङ्मयी पालकी का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करते हुए कुबेरनाथ राय लिखते हैं-

“हमारे इतिहास में इस प्रकार यह पालकी सहस्राब्दियों से चल रही है। यह है इस देश की परा प्रतिभा की पालकी। यह वाङ्मयी पालकी है, वैदिक ऊषा सूक्त से लेकर 'उर्वशी'

और 'अन्धायुग' तक। इस पालकी का ही नाम है चिन्मय भारत। इसी पर हमारी वह परा प्रतिभा अर्थात् सावित्री निरन्तर अग्रसर हो रही है निरवधि उत्तरकाल की ओर जिसे वैदिक युग में 'हंसपदी वाक्' कहा गया तो पौराणिक युग में 'सरस्वती' और आधुनिक युग में 'कल्पना या सिसृक्षा'।<sup>17</sup>

वाङ्मय देवी सरस्वती को बुद्धि, धृति, मति, श्रद्धा अर्थात् सम्पूर्ण शील की देवी माना गया है और समस्त भारतीय साहित्य में शील को प्रतिष्ठित किया गया है और इसी शील की गंध से भारतीय वाङ्मय मह-मह महक रहा है। इस शील गंध से सुगंधित 'सीता' समग्र भारतीय साहित्य की नायिका है तथा वह हमारे रूचिबोध की शाश्वत आधारभूमि है। लेखक के अनुसार सीता हमारे मन को इतने मोहक, अनुपम व उदात्त ढंग से स्पर्श करती है कि हम क्षण भर के लिए मन ही मन राम जैसे धीर, उदात्त व पवित्र हो जाते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य जीवन के स्थूल पक्षों के साथ-साथ सूक्ष्म तत्त्वों एवं शाश्वत मूल्यों से संयुक्त है और दिव्य-दृष्टि वाले प्राचीन ऋषि-कवियों द्वारा भारतीय साहित्य में आध्यात्मिक तत्त्वों का समावेश होता आया है। उर्ध्वगामी संस्कार देना भारतीय साहित्य-दृष्टि का सामान्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह चतुःपुरुषार्थ का उपदेश देता है और इन पुरुषार्थों के संदर्भ में ही 'शील' की बात प्रतिष्ठित हो जाती है। संस्कृति के सभी क्षेत्रों में आज की तुलना में प्राचीन काल अधिक समृद्ध है। रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत अपने महत् उद्देश्य, व्यापक जीवन फलक, श्रेष्ठ मानव-मूल्यों एवं शक्ति शील व सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के कारण अभूतपूर्व हैं।

भारतीय साहित्य का विस्तार वेदों से लेकर आधुनिकतम साहित्य तक है। इस समग्र साहित्य पर लेखक की सूक्ष्म, विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि गयी है। कुबेरनाथ राय की दृष्टि में रामायण भारतीय मनीषा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। उनकी तीन कृतियाँ 'महाकवि की तर्जनी', 'त्रेता का वृहद्साम' तथा 'रामायण महातीर्थम्' पूर्णतया राम कथा को समर्पित हैं जिनमें रामायण की अनन्त श्लाघा एवं श्री राम के उज्ज्वल चरित्र की सुगंध विद्यमान है। उन्होंने ने रामायण को 'गृहस्थ धर्म का महाकाव्य', 'नाक्षत्रिक महाकाव्य' तथा 'सावित्री विद्या का महाकाव्य' आदि से उपमित किया है। उपर्युक्त अभिधानों के अतिरिक्त रामायण को 'ऋत का काव्य', 'अनुशासन का काव्य' तथा 'अनासक्त पुरुषार्थ योग की गीता' भी कहा है।

लेखक ने रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत को भारत का त्रिनेत्र कहा है। रामायण से सर्वाधिक अभिभूत होते हुए भी उन्होंने महाभारत की अक्षुण्ण महिमा को स्वीकार किया है। उनका कथन है- “महाकाव्य क्या था, साक्षात् दावाग्नि था, कवि की ‘हुताशन मित्र’ संज्ञा को सार्थक करता हुआ। दावाग्नि जैसा ही करुण, दारुण, महिमामय और अपूर्व सुंदर महाकाव्य।”<sup>18</sup>

लेखक का अनुमान है कि यह वृहत्काय ग्रंथ एक कवि द्वारा नहीं अपितु कवियों की एक परम्परा द्वारा रचित है। यह करोड़ों भारतवासियों का जातीय महाकाव्य है। ‘रामचरित मानस’ को वे बीसवीं शती का राष्ट्रीय महाकाव्य स्वीकार करते हैं, जो धर्म की तरह हमारे समस्त जीवन को आधार बनाकर ‘धारण’ करने की क्षमता रखता है। यह महाकाव्य आध्यात्मिक धर्म तथा मानव धर्म की आचार संहिता तो सिखाता ही है साथ ही उत्तम व्यक्ति, उत्तम परिवार, उत्तम समाज एवं उत्तम राष्ट्र का उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। उनका मानना है कि रामचरित मानस कभी भी महत्व रहित और बासी नहीं होगा। रामायण कभी भी मृत नहीं हो सकता और उसका संस्करण ‘रामचरितमानस’ भी। इसकी थीम व्यक्ति और समूह के मन के उन मूलभूत तत्वों पर स्थित है जो सनातन महत्व रखते हैं।

### **निष्कर्ष**

कुबेरनाथ राय के अधिकांश लेखन की उपजीव्य-भूमि और प्रेरणा भूमि है भारतीय साहित्य विशेषतः वैष्णव-शाक्त-साहित्य परम्परा जिसकी व्याप्ति उनकी प्रथम कृति ‘प्रिया नीलकंठी’ से लेकर उनकी बीसवीं कृति ‘आगम की नाव’ तक सर्वत्र है। उनका दृढ़ विश्वास है कि आधुनिकतावादियों ने अपने प्राचीन वाङ्मय को गंभीर ढंग से नहीं परखा, यदि परखा होता तो सारा प्राचीन उन्हें फालतू प्रतीत नहीं होता क्योंकि मनुष्य का मनुष्यत्व आज भी कुरान, गीता, बाइबिल पर ही टिका हुआ है। उनके अनुसार आधुनिकता ने आज तक कोई ऐसी दीर्घजीवी रचना नहीं दी जिसे पुराने क्लासिकों के मुकाबले में रखा जा सके। इसीलिए वे उच्चतर मूल्यों एवं आदर्शों के निमित्त बार-बार प्राचीन क्लासिकल साहित्य की ओर जाते हैं जो जनमानस को विकलता, उत्तेजना, भय और निराशा से उबारने वाला तथा अभयता, प्रीति, निरुजता एवं मानसिक ऋद्धि का प्रदाता है तथा मनुष्य को ईश्वरोपम बनाने की क्षमता रखता है। उनका मानना है कि कालिदास व शैक्सपियर को अस्वीकार करने का अर्थ होगा- मनुष्य की मानसिक विशिष्टता को अस्वीकार करना।

कुबेरनाथ राय ने अखिल विश्व साहित्य का अनुशीलन करके भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टियों को आत्मसात करते हुए अनेक श्रेष्ठ साहित्यिक प्रतिमानों को प्रस्तुत किया है। साहित्य के प्रति उनका प्रेम अनन्य है। संसार के श्रेष्ठ साहित्य का उन्होंने अनुशीलन किया है और उसके महत्व पर निष्ठा व विश्वास व्यक्त किया है। साहित्य, कला, शिल्प और दर्शन, संक्षेप में सारी मानविकी, इस आन्तरिक क्षमता अर्थात् ध्यानस्थ होने की, अर्न्तमुखी होने की और आत्मस्थ होने की क्षमता को संरक्षित, संशोधित और वर्द्धित करते रहते हैं। इसी से वे कालिदास, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ, निराला, शेक्सपियर, तॉलस्टॉय को पढ़ने के पक्षपाती हैं और इनके महत्व में निष्ठापूर्वक विश्वास करता हूँ।<sup>30</sup>

### संदर्भ ग्रंथ सूची

- कुबेरनाथ राय, विषादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 250)
- कुबेरनाथ राय, विषादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 213)
- कुबेरनाथ राय, मराल, भारती ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1993(पृ.संख्या 158)
- बरमेश्वर नाथ राय, निवेदिता(रजत जयंती अंक), संपादक डॉ. मानधाता राय (पृ.संख्या 281)
- कुबेरनाथ राय, विनादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 234)
- कुबेरनाथ राय, महाकवि की तर्जनी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984 (पृ.संख्या 147)
- कुबेरनाथ राय, विषादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 210)
- कुबेरनाथ राय, विषादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 212)
- कुबेरनाथ राय, विषादयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 211)
- निवेदिता(रजत जयंती अंक), डॉ. महेन्द्र नाथ राय, (पृ.संख्या 251)
- कुबेरनाथ राय-मेरी सृष्टि मेरी दृष्टि-निवेदिता (रजत जयंती अंक), (पृ.संख्या 31)
- कुबेरनाथ राय, गंधमादन, भारती ज्ञानपीठ, नई दिल्ली (पृ.संख्या 321-322)
- डॉ. बरमेश्वर नाथ राय- निवेदिता (रजत जयंती अंक), (पृ.संख्या 273)
- कुबेरनाथ राय, दृष्टि अभिसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984 (पृ.संख्या166)
- कुबेरनाथ राय, मराल,भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,1993 -(पृ.संख्या 117)
- कुबेरनाथ राय, वाणी का क्षीर सागर, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणासी,1998 (पृ.संख्या 6)
- कुबेरनाथ राय, किरात नदी में चंद्रमधु, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणासी,1983 (पृ.संख्या 23)
- कुबेरनाथ राय,दृष्टि अभिसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979 (पृ.संख्या 36)